व्यक्तित्व की खोज में नारी

- संदर्भ - हिन्दी कहानी - साहित्य

❑ डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स*

भारतीय संस्कृति की मर्यादा के अनुसार नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है। विवाह के अनन्तर पति और पत्नी दोनों का व्यक्तित्व एक-दूसरे के साथ मिल कर इस प्रकार एक हो जाता है कि उसकी पृथक् कल्पना ही नहीं की जा सकती। उस समय वह दम्पति कहलाते हैं। पतिव्रता धर्म और एक-पत्नी व्रत की कल्पना भी भारतीय-संस्कृति की इसी मर्यादा का परिणाम थी। यही कारण था कि प्राचीन भारतीय पत्नी अलग से अपना कोई व्यक्तित्व या अस्तित्व नहीं रखती थी। वह अपने-आप को पुरुष की दासी या समर्पिता समझती थी परन्तु इधर पश्चिम और भौतिकवाद के प्रभाव से तथा पुरुष की अपनी त्रुटियों से इस मर्यादा में दरारें पड़ने लगी हैं। नारी और नर के उस पुराने सम्बन्ध की पवित्रता के सामने एक चुनौती आ गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि नारी अपने भीतर कुण्ठा, घुटन, क्षोभ और उपेक्षा का भाव अनुभव करने लगी है। इसका प्रभाव समकालीन साहित्य पर भी पड़ा और भारतीय वातावरण में निर्मित हिन्दी कथा-साहित्य भी इससे अछूता न रह सका।

हम देखते हैं कि अतीत की नारी के समान आज की नारी में हर प्रकार के वातावरण में अपने-आप को व्यवस्थित करने की क्षमतां नहीं है, यानी वह अब परिस्थितियों की दास नहीं है। न ही वह अब पुरुष की दासी और समर्पिता है वरन् वह उसकी मित्र या सहयोगी है। उसे जो कुछ पसन्द नहीं है उसके विरुद्ध उसमें आक्रोश है, क्षोभ है, एक विद्रोह है, पर दु:खद स्थिति तो यह है कि उसने स्वतन्त्रता की खोज के नाम पर भारतीय परम्परा के अनुसार स्थापित जीवन के शाश्वत मूल्यों को ही तिलाञ्जलि देने का निश्चय कर लिया है। उसके विरुद्ध वह विद्रोह कर उठती है। वह अब अपने व्यक्तित्व को पुरुष के व्यक्तित्व में समा जाने की अनुमति नहीं देती है। अब वह पत्नी होकर भी अपना पृथक् व्यक्तित्व बनाए रखने के लिए आतुर है। पुरुष के साथ पत्नी रूप में रहती हुई भी वह अपने व्यक्तित्व का पृथक् अस्तित्व किस प्रकार बनाए रखे, वर्तमान नारी के सम्मुख यह एक जटिल समस्या है या गम्भीर चुनौती है। दाम्पत्य जीवन की प्राचीन मर्यादाएं जब टूट रही हों और नवीन उनका स्थान ग्रहण कर रही हों तो ऐसे संक्रमण काल में-वर्तमान नारी इस समस्या का समाधान खोजने की चिंता में है। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि महात्मा गाँधी के राजनैतिक क्षितिज पर उदय होने के साथ ही राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी जब नवोत्थान के स्वर गूँजने लगे तो घर की चारदीवारी के भीतर एक प्रकार से कैद केवल पत्नी, मां, पुत्री, बहन आदि के दायरे में ही सीमित नारी की भी आँखें खुलीं। वह सोचने लगी कि उसकी भी अपनी कुछ मान्यताएं हैं और समाज के प्रति उसके भी कुछ दायित्व हैं। परिणामत: उसकी धमनियों में जागृति का रक्त स्पन्दन करने लगा। उसकी झलक तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट होकर उभरने लगी।

---

* *47/5 हाऊसिंग कालोनी, रूपनगर जम्मू*

हिन्दी साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द नवचेतना तथा नए युग का सन्देश लेकर आए, इसीलिए उनकी कहानियों में हम अधिकांश नारी पात्रों में पुरानी परम्पराओं से ऊब तथा खीज देखते हैं तथा नए विचारों के प्रति आतुरता। मुन्शी प्रेमचन्द से लेकर राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, कृष्णा सोवती और निर्मल वर्मा आदि सभी कहानीकारों के सम्पूर्ण कथा-साहित्य में हम नारी को इसी स्थिति के साथ दो-चार होते देखते हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी 'कुसुम' की नायिका पूर्णतया भारतीय परम्परा में पली नारी है। वह विवाह के बाद पति के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व खो देती है, परन्तु उत्तर में जब उसे पति की ओर से निरन्तर उपेक्षा और घृणा ही मिलती है तो उसका व्यक्तित्व स्वतन्त्र अस्तित्व में आने के लिए तड़प उठता है और इसलिए वह मायके से अपने पति को अन्तिम पत्र लिख कहती है- "आपके दिए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नहीं। इन्हें अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। आप जिस समय चाहें, मंगवा लें। मैंने इन्हें एक पिटारी में बन्द करके अलग रख दिया है। इसकी सूची भी वहीं रखी हुई है, मिला लीजिएगा।"[1]

जब उसके पति की यह इच्छा सबके सम्मुख प्रकट हो जाती है कि कुसुम के पिता ने उसे विलायत जाने का खर्च नहीं दिया, इसीलिए वह कुसुम के प्रति बेरुखी अपनाए हुए है तो उसके पिता उसे पहली किश्त के रूप में एक हजार रुपये भेजने के लिए तैयार भी हो जाते हैं, परन्तु कुसुम उसका खुलकर विरोध करती है-"यह उसी तरह की डाकाजनी है जैसी बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़कर ले गए और उसके घरवालों से उसकी मुक्ति के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।"[2]

जब कुसुम की मां उसे समझाते हुए कहती है कि पति देवता स्वरूप होता है। जब वह प्रसन्न हुआ है तो उसे अब फिर मत नाराज़ करो। तब कुसुम क्रोध में आकर उत्तर देती है- "ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूं, वहां रुपये गए तो मैं ज़हर खा लूंगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुंह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और तुम्हें डर लगता है तो मैं खुद कह दूं। मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है।"[3] और इसके बाद कुसुम अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेती है।

प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी "वेश्या" की नायिका माधुरी यद्यपि एक वेश्या के रूप में धनिक लोगों से प्रतिदिन लाखों रुपए ऐंठती रहती है परन्तु उसके भीतर कुलीन नारी का व्यक्तित्व अभी भी जीवित है, परन्तु पंगु रूप में, जो चलना चाहता हुआ भी चल नहीं पाता है। वास्तव में उसे वेश्या जीवन से घृणा है, इसीलिए वह दयाकृष्ण से कहती है-"तुम से हाथ जोड़ कर कहती हूं कि यहां से किसी ऐसी जगह चले चलो जहां हमें कोई न जानता हो। वहां शान्ति के साथ पड़े रहेंगे। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूं।"[4]

1. मानसरोवर, पृ० 19
2. मानसरोवर, पृ० 24
3. मानसरोवर, पृ० 24
4. मानसरोवर, पृ० 41

स्पष्ट है कि वह दयाकृष्ण का संबल पाकर कुलवधु बनना चाहती है। इसीलिए वह उसके मन की डांवाडोल स्थिति को भांप कर उसे फिर झंझोट कर कहती है-"मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने को तैयार हो? मैं सोने के महल को ठुकरा दूंगी, लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छांह तो मिलनी चाहिए।"[5]

जब दयाकृष्ण उसे फिर भी अपनाने में आनाकानी करता है तो वह कहती है-"तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से दूर समझते हो? तुम इस की कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती? तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है तो किस तरह प्राणों की भांति उसे संचित रखती है।"[6]

उसके इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि वेश्या में भी एक सन्नारी का व्यक्तित्व प्राप्त करने की कितनी तीव्र तड़प होती है। और जब उसे पुरुष अपनाने से झिझकता है तथा उस पर पतिता का कलंक लगा देता है, तो उसका मन पुरुष के प्रति घृणा और खीज से ही नहीं भर जाता, बल्कि विद्रोह भी कर उठता है। माधुरी के ये शब्द इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं-"पुरुष इतना निर्लज्ज है कि वेश्या की दुरावस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दयी कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं?"[7]

माधुरी के ये उदात्त विचार स्वयं इस बात के साक्षी हैं कि नारी अपने खोए व्यक्तित्व को फिर से पाना चाहती है, परन्तु पुरुष उसका साथ नहीं देता है और दूसरे शब्दों में वही इसमें सबसे बड़ा बाधक है।

मुन्शी प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी में मिस पद्मा एक सफल वकील है। इस नाते उसे विद्या, धन, सम्मान सभी कुछ प्राप्त है। स्वतन्त्र यौन व्यवहार में विश्वास रखने के कारण वह अपनी काम-वासना की पूर्ति भी अपनी इच्छानुसार कर लेती है, परन्तु वह फिर भी अपने चारों ओर तथा भीतर किसी अखरने वाले अभाव तथा खालीपन की असह्य पीड़ा से पीड़ित है। वह अभाव है एक सपत्नी तथा मां के व्यक्तित्व का, जिसे प्राप्त करने के लिए वह सदा परेशान रहती है। इसीलिए वह प्रो० प्रसाद को आत्म-समर्पण कर देती है, परन्तु प्रसाद बेवफा निकलता है जिससे पद्मा का जीवन पुत्र प्राप्त करने के बाद भी दु:खी हो जाता है। जब उसे पता चलता है कि प्रसाद बैंक से पद्मा द्वारा जमा की हुई एकमात्र पूंजी बीस हज़ार रुपए येन-केन प्रकारेण निकलवा कर अपने विद्यालय की किसी बालिका के साथ इंग्लैंड चला गया है तो वह प्रसाद का चित्र तोड़ कर पैरों तले रौंद देती है और उसके सामान को आग लगा देती है। उस दिन के बाद उसका मन बहुत दु:खी रहने लगता है। जब कभी वह अपने बंगले की खिड़की से नीचे सड़क पर अपने-अपने बच्चों को अंगुली लगाकर हंसते-खेलते जोड़ों को सैर करते देखती है तो उसकी छाती पर मानो हथौड़े की चोटें लगती हुई

5. मानसरोवर, पृ० 49
6. मानसरोवर, पृ० 50
7. मानसरोवर, पृ० 54

प्रतीत होती हैं। इधर वर्तमान में बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में तथा परिश्रम के बढ़ते प्रभाव से कुछ महिला कथा-लेखिकाओं ने भी अपना दृष्टिकोण नारी स्वतन्त्रता की वकालत करने के लिए पूर्णतया बदल लिया है। महिला कलाकारों ने विवाह-संस्था को एक प्रकार से व्यर्थ ही सिद्धकर दिया हुआ है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'प्रतिध्वनियाँ' की नायिका पति से तलाक लेकर एक प्रकार से मुक्ति का अनुभव करके कहती है-''एक मीनिंग लैस्स-सी रस्मों ने बाँध लिया है।''[8]

कुलभूषण की कहानी ''पहली सीढ़ी'' की नायिका नीरा को घी के व्यापार के मैनेजर की पत्नी के व्यक्तित्व की अपेक्षा एक्ट्रेस का व्यक्तित्व कहीं अधिक प्रिय है। इसीलिए वह अपने पति को मैनेजर के पद से त्यागपत्र दिलवा कर उक्त व्यक्तित्व की खोज में बम्बई पहुँच जाती है। वहां महालक्ष्मी फिल्म कम्पनी के डायरेक्टर कान्तिभाई से उसका वास्ता पड़ता है। उसके सौन्दर्य तथा तड़क-भड़क के कारण कान्तिभाई उसे अपने जाल में फंसाने के चक्कर में पड़ जाता है। मैट्रो में फिल्म देखते हुए तथा एस्टोरिया में भोजन करते समय कान्तिभाई उसके साथ जो कमीनी हरकतें करता है, उनसे वह मन-ही-मन खीज उठती है। उसका मन कहता है कि वहां से भाग जाए और फिर कान्तिभाई का मुंह भी न देखे, परन्तु सिने तारिका बनने का भूत उसके सिर पर अभी भी सवार है, इसीलिए तो वह बदमाश औरत की भूमिका तक निभाने के लिए भी तैयार हो जाती है। रह-रह कर अपने पति की याद उसे अवश्य परेशान करती है, परन्तु वह मन-ही मन निश्चय कर लेती है-''एक बार मुझे काम मिलेगा तो वह उसे कभी भी नाराज़ नहीं करेगी।''[9]

घर पहुंचने पर उसके पति ने उसे कान्तिभाई के साथ घूमने के अपराध में बुरी तरह पीटा। तब वह उससे झूठा वायदा करती है कि भविष्य में वह कान्तिभाई के पास कभी नहीं जाएगी, परन्तु उसके अन्तर्मन से निरन्तर यह ध्वनि उठती रहती है कि वह अवश्य एक्ट्रेस बनेगी और बदमाश औरत का रोल भी करेगी। जब लोग उसे पर्दे पर देख कर उसकी प्रशंसा करेंगे और उसके आटोग्राफ लेने के लिए लालायित होंगे तब उसका अन्तर्मन फूला नहीं समाएगा। अत: वहां तक पहुंचने के लिए वह अवश्य संघर्षरत रहेगी।

इन्दुबाली की कहानी ''मैं दूर से देखा करती हूँ'' की नायिका अपने पति से असीम प्यार पाने के बाद जब पति के व्यभिचारी हो जाने से उपेक्षिता हो जाती है तो उसे अपनी एकमात्र सन्तान अलका के होते हुए भी एक तीखा अभाव खटकता रहता है। पति के शराबी और व्यभिचारी हो जाने से वह अपने पत्नी के व्यक्तित्व में एक खालीपन, टूटन तथा घुटन महसूस करती है। उसे भीतर से कुछ कचोटता-सा महसूस होता है, जिससे उसका व्यक्तित्व अस्तित्व में आने के लिए बुरी तरह कराह उठता है। वह दीपक के बिखरते व्यक्तित्व को सम्भालने का भरसक प्रयत्न करती है परन्तु उसे असफलता ही मिलती है। परिणामत: उसके भीतर विद्रोह और हिंसा की तीव्र ज्वाला भड़क उठती है और वह घर की चारदीवारी से निकल कर बाहर आ जाती है। वह सोचती है-''मैं अपना अलभ्य प्यार देकर दासी बनना स्वीकार न कर सकी। मैं घर से बाहर निकल आई। दिशा ज्ञान भूल गई। कभी पहले निकली जो न थी। नवयुवक हर सांस में मेरी तरफ देखते। मेरे अद्वितीय यौवन को निहारते। मैं सब समझती और मन में गर्वित हो जाती। मेरा प्यार मेरे आंचल में एकत्रित

8. प्रतिध्वनियाँ पृ० 21
9. लतक पृ० 27

होने लगा तो मैं बोझ से कराह उठी। मन में आया क्यों न दीपक की तरह ही जी भर कर लुटा दूं। देखूं कैसा आनन्द है इसमें? प्रथम मौका मिलते ही मैं लुट भी गई। वह दीपक का ही एक मित्र था।.... एक दिन बदले की भावना ने मेरा सब कुछ भस्म कर दिया...।''[10]

इसके बाद वह अपने व्यक्तित्व को खण्ड-खण्ड हुआ महसूस करती है। कुछ समय के बाद दीपक की चेतना लौटते ही वह उसे फिर से अपनाने के लिए तैयार हो जाती है, परन्तु वह उससे दूर भागने की कोशिश करता है। यहां तक कि अब वह अलका से भी डरने लगती है। वह सोचती है-''मैं अपने अन्तर की नारी को क्षमा न कर सकी... न नारी हूं... न पत्नी ... न मां.... न प्रेमिका। सब का रूप देखा। सब का अपना-अपना स्वाद भी था, पर किसी में स्थिरता मैं बना न पाई। अपने ही हाथों लुट गई थी....पत्नी बनी भूल थी, मां बनी भूल थी, प्रेमिका बनी भूल थी, जीवन ही एक भूल-भुलैयां बन गया है।''[11] उसके बाद जब उसे बड़ा अकेलापन, बिखरापन, टूटन और इसकी वजह से भीतर-ही-भीतर कुछ कचोटता हुआ महसूस होने लगता है, पर वह पुन: अपने वास्तविक व्यक्तित्व को प्राप्त नहीं कर सकती है।

यशपाल की कहानी 'कम्बल दान' में मिसेज बलूरिया को मिथ्या व्यक्तित्व प्राप्त करने की एक अटल भूख है। मिसेज नरिचा की साड़ियां, ब्लाउज़ तथा उसके सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने की उसकी प्रवृत्ति से वह मन-ही-मन कुढ़ती है। मिसेज नरिचा द्वारा संचालित चलता-फिरता औषधालय और भिक्षुक शरणालय का समाचार सुनकर वह जलभुन जाती है, फिर पति के सुझाव से उसके गोदाम में पड़े बेकार पुराने कम्बलों का दान करने के लिए तैयार हो जाती है। इस प्रकार वह झूठी प्रशंसा और दानवीरता का झूठा व्यक्तित्व प्राप्त करने में सफल हो जाती है।

यशपाल की एक अन्य कहानी ''मंगला'' की नायिका मंगला समाज की एक उपेक्षिता नारी है। मंगला अपने पति के उपेक्षा भाव और उसकी विमाता के क्रूर व्यवहार से इतनी दु:खी हो जाती है कि वह बंसीधर पांडे के हाली शेरूआ के साथ जोगन बनने के लिए बागेसर जाने के लिए तैयार हो जाती है। वह दोनों रात के समय सफर करते हैं और दिन को शेरूआ के चचेरे भाई भोगिया लुहार के घर छुपे रहते हैं। जब वह खा-पीकर रात को आगे चलने के लिए तैयार होते हैं, तो शेरूआ उसे समझाता है कि वह जोगन बनने का अपना इरादा बदल दे और उसके साथ विवाह कर ले। काफी आनाकानी के बाद मंगला शेरूआ के आगे आत्म-समर्पण कर देती है। दो-तीन दिन भोगिया के घर अपनी वैवाहिक जीवन व्यतीत करके शेरूआ मंगला को भोगिया के साथ बागेसर भेजकर खुद अपने घर से अपनी दबी हुई चांदी बगैरा उखाड़ कर लाने के लिए चला जाता है। बागेसर में वे लोग नज़ीर पंसारी के यहां ठहरते हैं। दूसरे दिन सुबह भोगिया भी गायब हो जाता है। रह जाती है नजीर की दया पर बेचारी बेसहारा मंगला! जोगन के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की खोज में रास्ता भूली हुई मंगला। यह पता चलने पर कि मंगला को शेरूआ और भोगिया भगा कर लाए हैं, लोग नज़ीर का घर घेर लेते हैं। मंगला गांव के पटवारी को सौंप दी जाती है। पटवारी उसे सिनेमा दिखाता है और बागों की सैर करवाता है। वह अति दु:खी हो जाती है। परिणाम स्वरूप उसे क्षय रोग हो जाता है। उसे हास्पिटल में पहुँचाया जाता है, परन्तु वहां भी उसके साथ अच्छा

10. मेरी तीन मौतें, पृ० 40
11. मेरी तीन मौतें पृ० 41

व्यवहार नहीं होता है। उसकी दवाई आदि का उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता, परन्तु गुलाब मेहतर और उसकी मां मिसरी उसकी बड़ी सेवा सुश्रूषा करते हैं। उसे विवश होकर उनके हाथ का छुआ भोजन खाना पड़ता है। उधर नजीर तथा उसका पुत्र, शेरूआ तथा भोगिया सभी को पुलिस गिरफ्तार कर लेती है, परन्तु अदालत मंगला को मुक्त कर देती है। कहीं भी आश्रय न पाकर वह गुलाब मेहतर के यहां चली जाती है। ऊँची जात वालों को यह सहन नहीं होता है। अत: वे गुलाब मेहतर का घर जलाने के लिए आ धमकते हैं। मामला संगीन हो जाने पर पुलिस तथा मैजिस्ट्रेट भी वहां आ पहुँचते हैं। जब मैजिस्ट्रेट मंगला को वहां से चले जाने का आदेश देता है तो वह पूछती है–''कहां जाऊँ?''[12] तो मैजिस्ट्रेट वहां एकत्र हुई भीड़ को सम्बोधित करके पूछता है–कोई उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर ले। यह सुनकर भीड़ धीरे-धीरे छटने लगती है। यह दृश्य देखकर मैजिस्ट्रेट की आँखों से भी आँसू निकल आते हैं। अन्तत: वह मंगला को विधवाश्रम में चली जाने का आदेश देकर वहां से चला जाता है। मंगला को उसकी इच्छा के विपरीत विधवाश्रम भेज दिया जाता है, परन्तु मंगला दूसरे दिन वहां से भाग जाती है और शीघ्र ही पकड़ी जाने पर अदालत में पेश की जाती है। मैजिस्ट्रेट की आज्ञा से स्वतन्त्र होकर वह फिर गुलाब मेहतर के घर आ जाती है। जात-बिरादरी के कठोर दबाव से मेहतरों की पंचायत गुलाब मेहता को मंगला को घर से निकालने के लिए विवश कर देती है। इस प्रकार बेचारी मंगला को फिर निकाल दिया जाता है। अत: अन्त में वह बेसहारा होकर दर-दर ठोकरों के लिए विवश हो जाती है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'तुक' की नायिका विवाह और प्रेम को पूरी तरह असंगत और मूर्खों की बात मानती है। उसकी राय में जो नारियां अपने पतियों को प्यार करती हैं, वे अति मूर्खों की दुनियां में रहती हैं। वह पति और विवाह संस्था दोनों को ही घृणास्पद समझती है।[1] इसी प्रकार उसकी एक अन्य कहानी–''एक और विवाह'' की नायिका व्यवस्थित विवाह में विश्वास नहीं करती।[13]

इन्दुबाली की कहानी 'पालतु' की नायिका ममता पति का प्यार न पाकर पत्नी के व्यक्तित्व से अपने आपको वंचित समझती है। वह अपने आपको पति के घर में वहां पाले हुए खरगोश, बिल्ली, कुत्ते और मिट्ठू के समान महसूस करती है। पति के रूखे व्यवहार के कारण उसे प्रत्येक स्थान पर एक विचित्र सूनापन-सा अनुभव होता है। उसका पति घर से बाहर नौकर, पैसा, गाड़ी, शराब, नारी और दोस्तों-मित्रों में सदा मस्त रहता है, परन्तु घर आते ही वह कुछ नहीं है। वहां वह सर्वथा मौन तथा खोया-खोया ही रहता है। उसकी इस प्रकार की स्थिति ममता के व्यक्तित्व को घुन की तरह तिल-तिल खाती है। ऐसी स्थिति में वह अपनी स्वतन्त्र मन्जिल का चुनाव करने के लिए आतुर हो उठती है। वह दुखी होकर मरना चाहती है, परन्तु उसके अन्तरतम की कोई साध उसे ऐसा भी नहीं करने देती। उसकी उत्कट इच्छा है कि वह एक बार पुन: अपने टूटते व्यक्तित्व को सम्भालने में सक्षम होकर अस्तित्व में आ जाए। एक दिन रात को अपने पालतू खरगोश-खरगोशनी के जोड़े को अपने बच्चों को साथ लेकर और उनके साथ लिपट कर सोया हुआ देखकर उसका तन-बदन सिहर उठता है। उसके भीतर-ही-भीतर कुछ दबा हुआ बाहर आने के लिए छटपटाता है। अत: वह अपने व्यक्तित्व को बचाए रखने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। इतने में नशे में धुत उसका पति भी घर पहुँच

12 महिला कलाकार विशेषांक-मृदुलागर्ग-मनोरमा 1998
13 एक और विवाह पृ० 98

जाता है। उसे बिस्तर पर लिटाती हुई ममता महसूस करती है मानो वह अपनी ही लाश को लिटा रही है। उसे प्रतीत होने लगता है कि उसके व्यक्तित्व को चारों ओर से आए प्रश्नों के तीरों ने छलनी कर दिया हुआ है। उसे अपना व्यक्तित्व टूटा हुआ या बिखरा हुआ महसूस होता है।

इन्दुबाली की एक अन्य कहानी ''धरती के अंगारे'' पत्र रूप में लिखी गई है। उपमा के द्वारा कल्पना को लिखे पत्र में आधुनिक नारी के व्यक्तित्व की प्राचीन नारी के व्यक्तित्व के साथ तुलना की गई है कि आज की नारी भूतकाल की नारी से सर्वथा भिन्न है। वह अब पुरुष की सम्पत्ति नहीं है और न ही वह अब मात्र उसके भोग की सामग्री ही है। अब वह न ही दासी है और न ही अन्धविश्वास में रहने वाली पतिव्रता। वह लिखती है–''वह यदि कुछ है तो जीवन साथिन, मित्र, उसके जीवन की पूरक। पुरुष ने प्यार को गौण रूप और वासना को प्रमुखता दे दी है। पुरुष नई-नई कलियों का रस पान करते हैं परन्तु स्त्री के लिए ये सब रस नहीं हैं। वह प्यार को प्रधान मानती है।''[14]

उपमा के अनुसार आज की नारी का व्यक्तित्व पुरुष के व्यक्तित्व से अलग अस्तित्व रखता है और वह उससे किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। इसीलिए वह कल्पना को आगे चलकर लिखती है–''समाज के बदलते रूप में स्त्रियां जीवन-संग्राम में भी पुरुष के साथ बराबरी की स्पर्धा करती हैं। वे अब प्यार की सूनी दुकान ही खोल कर नहीं बैठी रहेंगी बल्कि हर क्षेत्र में पुरुष के साथ रहेंगी। वे न भी रखना चाहें तो अकेली ही आगे बढ़ जाएंगी। उन में साहस है, शक्ति है। असम्भव शब्द अब उसका परिचित नहीं है। अबला भाव से दूर, बहुत दूर निकल गई है आज नारी। अब तो पुरुष को उसे पाने के लिए दौड़ लगानी पड़ेगी, जैसे दासता की दौड़ लगाया करती थी नारी।''[15]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आज की नारी भूतकाल की नारी से सर्वथा भिन्न है। अपने व्यक्तित्व के निर्माण, सम्मान और अस्तित्व के लिए अब वह स्वयं उत्तरदायी है तथा चिन्तित है।

इन्दुबाली की एक अन्य कहानी ''आईने की दुल्हन'' की नायिका मंगला अपने व्यक्तित्व को कर्त्तव्य पालन के मोटे पर्दे के पीछे इतना दबा देती है कि मानो उसका कहीं अस्तित्व ही शेष नहीं है। उसके जीवन की सबसे बड़ी बिड़म्बना उसका आजन्म अविवाहित रहने का व्रत है। अपने छोटे भाई के विवाह के अवसर पर जब वह देर से सम्भाल कर रखी हुई साड़ी पर दृष्टि डालती है, तो उसके व्यक्तित्व में जैसे फिर चेतना आ जाती है और वह बाहर आने के लिए कराह उठता है। वह साड़ी पहन लेती है, परन्तु उसके छोटे भाई और बहनें उसका व्यंग्यपूर्ण उपहास उड़ाते हैं और उनकी खिलखिलाहट की गूंज में मंगला के सोए हुए व्यक्तित्व में हलचल जैसी मच जाती है। अब उसकी आत्मा अपने व्यक्तित्व को प्राप्त करने के लिए बड़ी आतुर हो जाती है। अब उसे कर्त्तव्य-पालन मात्र बोझ प्रतीत होने लगता है। उसकी आत्मा अपने वर्तमान के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है। उसे अपने चारों ओर एक भयंकर अन्धकार की अनुभूति होने

14 मेरी तीन सौतें, पृ. 235
15 मेरी तीन सौतें, पृ. 237

लगती है, जिसके आगे आत्म-समर्पण करना वह कदापि उचित नहीं समझती है। उसे लगता है कि उसका व्यक्तित्व धरती, हवा, धूप, आकाश सभी जगह बिखरा हुआ है, जिसे समेट कर एकत्र करने के लिए उसकी आत्मा चीख-चीख कर पुकार रही है-''धरती, हवा, धूप, खुश्बू, आसमान में उसका भी कुछ हिस्सा है।....अब अपने लिए जीना ही होगा।''[16]

वह सोचती है कि उसके व्यक्तित्व का कुछ अंश शेष भी बचा है कि नहीं? इसीलिए वह शीशे के सामने खड़ी होकर अपनी आकृति में अपने व्यक्तित्व की तलाश करती है। अपने चेहरे को इधर-उधर घुमाती है और उसे आभास होने लगता है कि उसने अभी कुछ भी नहीं खोया है। सभी कुछ उसके पास है। वह अपना जीवन जी सकती है। केवल कर्त्तव्य पालन के भाव ने उसके भीतर एक उपेक्षा वृत्ति उत्पन्न कर दी थी। उसे प्रतीत होने लगता है-''उस का व्यक्तित्व आज फूट पड़ना चाहता है। लगता है कि उसके व्यक्तित्व पर पड़ी सारी बर्फ पिघल गई और अनार की हरियाली लहलहा उठी है। कुछ क्षणों के बाद उस में फिर निराशा का भाव जाग उठता है।''[17] उसका उभरता व्यक्तित्व फिर असन्तुलन की स्थिति में आ जाता है। परन्तु आधी रात के समय उसमें फिर एक विचित्र आतुरता उभरने लगती है, जो उसे नहा धोकर वही साड़ी, भाभी के उतारे हुए कलीड़े और कांच की चूड़ियां, बिन्दी-काजल आदि पहनने के लिए विवश करती है। ये सब वह अति शीघ्रता से पहन कर एक आदम-कद शीशे के सामने खड़ी हो जाती है। उसे नवेली दुल्हन का अपना व्यक्तित्व बड़ा ही प्यारा और मोहक प्रतीत होने लगता है। अब उसके कल्पना-लोक के समाचार-पत्र में उसके विवाह का चित्र सहित समाचार और सुहागरात का अद्‌भुत आनन्द चलचित्र के समान आता हुआ प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार वह ''आईने की दुल्हन'' बन कर अपना काल्पनिक व्यक्तित्व पाकर असीम आनन्द का अनुभव करती है।

निरूपमा सोवती के अनुसार विवाह नारी के व्यक्तित्व को गुलामी का जीवन जीने के लिए विवश करता है। और एक प्रकार उसके स्वरूप को ही नष्ट कर देता है। यह तो अपने हाथों ही अपने पहले स्वरूप का गला घोटना होता है। विवाह के उपरान्त अपनी पहली आदतों को विवश होकर छोड़ना पड़ता है।[18] मणिका मोहिनी की कहानी ''ढाई आखर प्रेम का'' में पति को पूरी तरह नकार कर 'बड़ी बकवास' चीज़ तक कह कर विवाह-संस्था को व्यर्थ सिद्ध किया गया है।''[19]

मारिशस की कहानीकार भानुमती नागदान की कहानी 'अनुबन्धन' की नायिका विलास अवनीश की पत्नी और दो बच्चों की मां है। उनका विवाह हुए चौदह वर्ष बीत जाते हैं। विवाह के पहले विलास का सम्बन्ध अपने भाई के मित्र स्वप्निल के साथ होता है, जिसकी जड़ उसके हृदय के किसी कोने में अभी भी शेष है। इसीलिए स्वप्निल के पोर्ट लुई में आने की सूचना पाकर वह सिहर उठती है। वह सोचती है कि वस्तुत: अवनीश के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध

16. मेरी तीन मौतें, पृ. 187
17. मेरी तीन मौतें, पृ. 188
18. आतंक बीज तलफलाहट पृ. 52
19. अभी तलाश जारी है पृ. 18

हुआ था। इसीलिए आरम्भ में उसका स्पर्श भी उसे अखरने लगा था- ''मैं कैसे उन्हें समझाती कि मन की दुनिया एक अलग दुनिया है। विवाह-वेदी की पवित्र अग्नि, मंत्रोच्चारण और अर्थहीन रस्में उसे नहीं बदल सकतीं। उनसे पुरुष को सिर्फ सामाजिक और शारीरिक अधिकार प्राप्त होता है।''[20]

पहली सन्तान कंचन का जन्म होने पर विलास के मन से स्वप्निल की छाया कुछ धुंधली पड़ जाती है और वह अवनीश के कुछ और समीप आ जाती है। उसके तुरन्त बाद स्वप्निल उसके भाई विशाल के साथ विदेश चला जाता है और वहीं पर विवाह भी कर लेता है।

पुत्र के जन्म के बाद विलास और अवनीश एक-दूसरे के कुछ और समीप आ जाते हैं। स्वप्निल एक दिन अचानक विदेश से पोर्ट लुई पहुँचने पर उनके घर जाता है। उस समय अवनीश घर पर नहीं था। नमस्ते के लिए विलास के हाथों को स्वप्निल ज्यों ही अपने हाथों में लेता है तो विलास का शरीर उसके सुखद स्पर्श से सहसा तरंगित हो उठता है। इसके साथ ही अतीत की सारी मधुर स्मृतियां उनके मन-मस्तिष्क में साकार हो उठतीं हैं और उन में दबा प्यार उमड़ने लग पड़ता है। कुछ समय पश्चात् अवनीश और उनके दोनों बच्चे भी घर पहुँच जाते हैं। इस से विलास... की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। वह अनुभव करती है कि उसका व्यक्तित्व विभाजित है। इसीलिए आगे चल कर वह कहती है- ''मेरी स्थिति अजीब थी। मैं विभाजित क्षणों में जी रही थी। स्वप्निल और अवनीश दोनों से मुझे प्रेम था। अवनीश मेरे पति थे। मेरे बच्चों के पिता। हमारे सुख, आराम और भविष्य की उन्हें चिन्ता थी। उनके प्रति मेरे प्रेम में कर्त्तव्य था, कृतज्ञता थी। हमारे मिलन में दो परिवारों की प्रतिष्ठा सम्मिलित थी और उस प्रतिष्ठा को हमें सुरक्षित रखना था। इन्हीं तत्त्वों की वजह से हमारा प्रेम निरन्तर गहरा होता गया था। स्वप्निल के प्रति भी मेरे मन में अगाध प्रेम था। उसे मैं मोह नहीं कह सकती। वह ऐसा प्रेम था जो एक औरत को मर्द से होता है, जहां समाज नहीं था, डर नहीं था, कर्त्तव्य की चिन्ता नहीं थी। आज इतने सालों के बाद भी स्वप्निल मेरे बिल्कुल करीब है तो मेरा प्यार जैसे उमड़-उमड़ कर बाहर आना चाहता है। मैं चीख-चीख कर लोगों से यह कहना चाहती हूं कि हां स्वप्निल से मुझे प्रेम है। और सच्चे प्रेम को शादी की दकियानूसी रस्में मिटा नहीं सकतीं। यह सच है कि उसने कभी मुझे स्पर्श तक नहीं किया पर आज मेरा मन करता है कि मैं स्वयं उसका स्पर्श करूं, चूमूं उसे अपनी बाहों में छिपा लूं। यही मेरे प्रेम की पुकार है।''[21]

परन्तु इसके साथ ही उसके संस्कार उसे सचेत करते हैं कि अब वह अवनीश की है और अब वह उसकी वस्तु किसी दूसरे को कदापि नहीं दे सकती।

स्वप्निल वहां जितने दिन भी रहता है प्राय: उनके घर आता-जाता रहता है। उनके साथ पिकनिकों पर जाता, सिनेमा देखने जाता और जब वह विदेश जाने से पहले अवनीश की अनुपस्थिति में उससे मिलने आता है तो विलास की मानसिक स्थिति फिर बड़ी विचित्र हो जाती है, जिसका ज़िकर वह यों करती है- ''मैं भीतर से बहुत अशान्त थी और बार-बार सोच रही थी कि सब कुछ छोड़ कर अभी स्वप्निल के साथ चल पड़ूं और एक नये जीवन की शुरुआत करूं, लेकिन फिर सोचती, नहीं मैं अपना घर, अपने बच्चे, अपने पति को छोड़

20-21 धर्मयुग अगस्त 1974 पृ० 13-14

कर किसी दूसरे पुरुष की अनुगामिनी नहीं हो सकंती। जाते-जाते जब स्वप्निल विलास के हाथों को अपने हाथों में लेने लगता है तो उसी समय अवनीश घर पहुँच जाता है जो यह सब देखकर एकदम सन्न रह जाता है। विलास स्वप्निल के चले जाने के बाद बड़ा रोती है अवनीश के पास लेटे-लेटे। अवनीश उसे क्षमा करके अपने गले से लगा लेता है।''[22]

दीप्ति खण्डेवाल की कहानी-'ये भी कोई गीत है।' में निशा और राजेश, शेखर और पुष्पा, इन्द्रनाथ और दीपाली का दाम्पत्य जीवन पूर्ण नहीं है। तीनों घुटन, असन्तोष और क्षोभ से हर समय पीड़ित हैं। तीनों के वैवाहिक जीवन असन्तुलित हैं। इसीलिए निशा कहती है-''मैं पत्नीत्व, मातृत्व और गृहणीत्व के सारे बन्धन भूलकर कुछ क्षणों के लिए मुक्त हो जाना चाहती हूँ। मन का मृग किसी अशेष तृप्ति की कामना से फिर भटकने लगा है।''[23] आखिर ऐसा क्यों ? क्योंकि आज की अधुनातन पत्नी अपने पत्नित्व के सारे कर्त्तव्यों के प्रति अपेक्षाकृत कम सजग है। उसका झुकाव अधिकतर अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने तथा पार्टियों और क्लबों में जाने की ओर है। अब पति से वह केवल अपनी ऐश में सहयोग तथा चुप्पी चाहती है। इसीलिए उसके पत्नित्व और मातृत्व दोनों अधूरे हैं। और इन दोनों के अधूरा होने पर उसका व्यक्तित्व भी कैसे पूर्ण हो सकता है? पुष्पा शेखर के आगे पूर्णतया समर्पिता है, परन्तु शेखर की ओर से अनुकूल प्यार न मिलने पर वह अपने भीतर एक विचित्र एवं पीड़ादायिनी अपूर्णता अनुभव करती है। अत: वह अपना वास्तविक व्यक्तित्व प्राप्त करने के लिए मन-ही-मन तड़पती रहती है।

दीपाली एक लेडी डाक्टर (सर्जन) है और उसका पति इन्द्रनाथ एक प्रोफेसर दीपाली की आय इन्द्रनाथ से कई गुणा अधिक है। इसलिए उनके प्रेम-विवाह में कुछ ही दिनों के अनन्तर कटुता आनी आरम्भ हो जाती है। परिणामत: प्रो. इन्द्रनाथ आत्महत्या कर लेता है।

मन्नु भण्डारी की कहानी ''अकेली'' की नायिका सोमा-बुआ भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील रहती है। उसका पति संन्यासी बन चुका है और उसका एकमात्र पुत्र असमय ही काल कवलित हो जाता है। इस प्रकार सोमा बुआ विषैले अभावों से पीड़ित है। ये अभाव उसके व्यक्तित्व को इस प्रकार दबा देते हैं कि उसका कहीं अस्तित्व ही शेष नहीं रहता है, परन्तु फिर भी रह-रह कर उसके हृदय में अपने व्यक्तित्व को उभारने के लिए एक आन्दोलन-सा उठता है। एक तड़प या छटपटाहट होती है। इसीलिए वह शहर में किसी परिचित के यहां या सम्बन्धी के घर रस्मी बुलावे पर भी झट पहुंच जाती है। ऐसे अवसरों में सम्मिलित होने से उसे बड़ा सकून तथा शान्ति मिलती है। स्वभावानुसार किशोरी लाल के बेटे के मुण्डन-संस्कार के अवसर पर उसके बिना बुलाए चले जाने पर जब उसका पति उस पर बड़ा नाराज हो जाता है। तब वह अपनी पड़ोसन राधा से कहती ''मेरे लिए जैसा हरखू वैसा ही किशोरी लाल। आज हरखू नहीं है, इसीलिए दूसरों की देख-रेख कर मन भरमाती रहती हूँ।''[24]

22. धर्म युग अगस्त 1974 पृ. 13-14
23 धर्मयुग, दिसम्बर 23, 1974
24. श्रेष्ठ कहानियां पृ. 61.

एक दिन सोमा बुआ के देवर के ससुराल वाले जब अपनी लड़की का विवाह करने के लिए उसी शहर आते हैं तो वह भी उस विवाह में सम्मिलित होने के लिए तैयारी करने लगती है। अपने मृतपुत्र की एकमात्र निशानी एक अंगूठी भी बेच कर साड़ी-ब्लाउज़ का कपड़ा तथा सिन्दूर-दानी खरीद लेती है। और अपने पहनने की साड़ी भी रंग लेती है, परन्तु जब काफी रात गए तक प्रतीक्षा करने पर भी उसे कोई भी निमन्त्रण नहीं आता है तो वह बड़ी निराश हो जाती है।[25]

मन्नू भण्डारी की एक अन्य कहानी 'यही सच्च है' में दीपा का व्यक्तित्व बड़ी उलझन तथा डांवाडोल स्थिति में है। वह कभी निशीथ की ओर झुकती है तो कभी संजय की ओर दीपा एक उच्च शिक्षा प्राप्त महिला है। निशीथ की बेवफाई के कारण ही तो वह कानपुर में संजय की ओर झुकती है, परन्तु संजय उसके समर्पण में विश्वास नहीं करता है। उसके मन को रह-रह कर कुछ कुरेदता रहता है कि दीपा के मन में अभी भी निशीथ ही स्थान बनाए हुए है। संजय के आगे पूर्ण आत्म-समर्पण करके भी वह उसके मन में विश्वास उत्पन्न करने में असफल रहती है। बस, यही उसके नारीत्व की पराजय है। कलकत्ता में इण्टरव्यू के लिए आने पर अपनी सखी हीरा के साथ काफी-हाउस में उसका निशीथ के साथ साक्षात्कार होता है और फिर निशीथ उसे इण्टरव्यू में सफल करवाने तथा पद पर नियुक्त करवाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है। बदले में वह उसे यन्त्र-चालित मशीन जैसी बनाकर अपनी इच्छानुसार एक होटल में रखता है। परन्तु उसके साथ चलते समय उसे बड़ी बेबसी का अनुभव होता है। इसीलिए वह सोचती है ''यों सड़क पर ऐसी हरकतें मुझे स्वयं पसन्द नहीं, पर आज जाने क्यों किसी की बाहों की लपेट के लिए मेरा मन ललक उठा है। मैं जानती हूँ कि जब निशीथ बगल में बैठा हो, उस समय ऐसी इच्छा करना या ऐसी बात सोचना भी कितना अनुचित है, पर मैं क्या करूँ? कितनी द्रुत गति से यह टैक्सी चली जा रही है। मुझे लगता है, उतनी ही द्रुतगति से मैं भी वहीं जा रही हूं अनुचित, अवांछित दिशाओं की ओर।''[26]

और वह उसके साथ पहले स्काईरूम होटल और दूसरे दिन 'लेक' पर रहते हुए बड़ी डांवाडोल स्थिति में है। कभी वह उसके वर्तमान के एहसास के बदले उसके पिछले अपराध क्षमा करके उसके आगे अपने मन को पूर्ण आत्म-समर्पण की स्थिति में लाने लगती है तो कभी संजय का ध्यान आते ही वह निशीथ को स्पष्ट कहने की हिम्मत जुटाने का उपक्रम करने लगती है-''मैं संजय को अपना प्यार दे चुकी हूं।'' ऐसी मानसिक उधेड़-बुन में उसे लगता है, कुछ उसे भीतर-ही-भीतर कचोट रहा है और फिर कानपुर लौटने पर उसका मन निशीथ की ओर बड़ी बेबसी से आकर्षित होता है- इसलिए विदा होते समय वह सोचती है- ''मैं सब समझ गई निशीथ, सब समझ गई, जो तुम चार दिनों में नहीं कर पाए वह तुम्हारे इस क्षणिक स्पर्श ने कर दिया। विश्वास करो यदि तुम मेरे हो तो मैं भी तुम्हारी हूं ; केवल तुम्हारी, एक मात्र तुम्हारी पर मैं कुछ कर नहीं पाती, बस, ट्रेन के साथ चलते निशीथ को देखती भर रहती हूं। ...मेरी छलछलाई आंखें मुंद जाती हैं। मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य

25. वही पृ. 58-65
26. श्रेष्ठ कहानियां पृ. 134

है, बाकी सब झूठ है। अपने को भूलने का, भरमाने का, छलाने का असफल प्रयास है और मुझे लगता है, यह दैत्याकार ट्रेन मुझे मेरे घर, अपने घर से कहीं दूर, दूर ले जा रही है, अनदेखी, अनजानी राहों में गुमराह करने के लिए, भटकाने के लिए।''[27] परन्तु संजय का ध्यान आते ही वह कांप उठती है। वह फिर निश्चय करती है कि उसे सारी बात समझा देगी। उसके हृदय की अतल गहराइयों में छुपा निशीथ का प्यार कलकत्ता में उसके तीन-चार दिन के सान्निध्य से ही बाहर आ गया है। अब वह आगे के लिए संजय से छल नहीं करेगी। वह सोचती है, वह उसे कह देगी- ''तुम्हारे उपकारों के बदले मैंने भले ही तुम्हें आत्म-समर्पण किया था परन्तु उसमें पूर्णता नहीं आई थी। इसीलिए प्यार की बेसुध घड़ियां, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वे पल, जहां शब्द चूक जाते हैं, हमारे जीवन में कभी नहीं आए। तुम्हीं बताओ, आए कभी? तुम्हारे असंख्य आलिङ्गनों और चुम्बनों के बीच भी एक अण के लिए भी तो मैंने तन-मन की सुध बिसार देने वाली पुलक या मादकता का अनुभव नहीं किया।[28]

मैं सोचती हूँ कि निशीथ के चले जाने के बाद मेरे जीवन में एक विराट शून्यता आ गई थी, एक खोखलापन आ गया था, तुमने उसकी पूर्ति की, तुम पूरक थे, मैं गलती से तुम्हें प्रियतम समझ बैठी। मुझे क्षमा कर दो लौट जाओ।''[29]

इस प्रकार दीपा एक विचित्र मानसिक स्थिति में पहुँच जाती है। जब उसे संजय के छोटे से पत्र द्वारा मालूम होता है कि पाँच-छः दिन के लिए वह कटक जा रहा है, तो वह एक हल्कापन अनुभव करती है और उधर निशीथ को लिखे पत्र के उत्तर की बड़े उतावलेपन से प्रतीक्षा करती है। उसकी दोहरी मानसिक स्थिति फिर डांवाडोल हो जाती है। वह एक दिन गली में खड़ी-खड़ी सोचती है-''लगता है जैसे मेरी राहें भटक गई हैं। मंज़िल खो गई है। मैं स्वयं नहीं जानती आखिर मुझे जाना कहाँ है? फिर भी निरुद्देश्य चलती रहती हूँ, पर आखिर कब तक यों भटकती रहूँ?''[30] और फिर वह जैसे हार कर लौट पड़ती है। घर आने पर भी उसकी मानसिक स्थिति यथावत् अस्थिर है। उसे महसूस होता है कि उसे अन्दर-ही-अन्दर कुछ छील रहा है। कुछ कचोट रहा है। एक अजीब-सी घुटन से उसका दम घुटता जाता है। परन्तु ज्यों ही उसे निशीथ का अत्यन्त संक्षिप्त तथा रूखा-सा पत्र मिलता है, उसके हृदय का तूफान ऐसे ही ठंडा पड़ जाता है जैसे उबलते हुए दूध पर पानी का छींटा पड़ने से वह झट दब जाता है और उसी समय उसे मुस्कुराता हुआ संजय सामने खड़ा दिखाई देता है। वह एक झटके से अपनी ख्वाबों की दुनिया से लौट कर उसे वैसे ही पहचानने की कोशिश करती है जैसे कोई व्यक्ति अपनी खोई हुई वस्तु के मिलने पर करता है। तब उसके आलिंगन में बद्ध होकर वह अन्तिम निर्णय ले लेती है- ''यही सच है। वह सब झूठ था।'' इस प्रकार अन्ततः वह अपने व्यक्तित्व को सही दिशा देने में सफल हो जाती है।

इस कहानी के सन्दर्भ में डॉ. उमा शुक्ला के ये शब्द बड़े प्रासङ्गिक प्रतीत होते हैं- ''आज नारी ने पाप, नैतिकता, धर्म के अंकुश को अस्वीकार करके फेंक दिया है।''[31]

---

27. श्रेष्ठ कहानियां, पृ. 140
28-29. श्रेष्ठ कहानियां पृ. 142
30. श्रेष्ठ कहानियां पृ. 144
31. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप सं. श्रीधार शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद 1987 पृ. 52

कमलेश्वर की कहानी ''कुछ नहीं कोई नहीं'' में गौरी का पुलिस के सिपाही दीवान के साथ अनुचित संबंध है। दीवान का जवान पुत्र सूरज यह सब सहन नहीं करता है। इसी बात पर उसकी अपने बाप से खटपट होती रहती है जो अन्ततः भारी शत्रुता में बदल जाती है। वह एक बार अपने बाप को इतना पीटता है कि उसे बेहोश कर देता है। वह जाकर गौरी को भी बार-बार नसीहत करता है कि वह दीवान को अपने पास न आने दे। गौरी उसके मदमाते यौवन से आकर्षित हो जाती है। जब दीवान एक झूठा केस बनवाकर सूरज को पकड़वा देता है तो गौरी देवीदीन परचूनी वाले को दो हज़ार रुपया देकर उसे छुड़वा लेती है। यह रुपया उसने एक मन्दिर बनवाने के लिए रखा था। वह उसे कई-कई दिनों के अन्तराल में मिलता है और यही नसीहत करता है कि वह दीवान को अपने पास न आने दे। उसके अदालत में पेश न होने पर उसकी जमानत ज़ब्त हो जाती है और गिरफ्तारी वारन्ट निकलते हैं, परन्तु वह पकड़ा नहीं जाता है। एक दिन जब वह मन्दिर के लिए कलश बनवाकर ले जा रहा था तो पुलिस उसका पीछा करती है, परन्तु वह सोने का कलश वहीं फेंक कर भाग निकलता है। कुछ दिनों के बाद गौरी को सन्देश भेजता है कि मिल जाओ परन्तु वह नहीं आती और पत्र लिख कर अपनी बेबसी प्रकट करती है- ''मैं बेबस थी। दीवान को नहीं रोक सकी क्योंकि आदमी के बिना स्त्री का जीवन अधूरा है। परन्तु जब वह गर्भवती हो जाती है तो दीवान उसके जहां आना बन्द कर देता है। तब वह सूरज को पत्र लिखती है- ''जब से दीवान जी को यह पता चला है तब से यहां नहीं आते। अब मैं क्या करूं? तुमने बहुत समझाया था पर मैं चूक गई। अब मेरा क्या होगा? शायद मैं छटपटा-छटपटा कर इसी घर में अकेले मर जाऊंगी और अब तो दोहरा पाप है। अकेली मर जाती तो ठीक था। खैर, भुगतूंगी। तुम्हें सौंगन्ध है अगर जोख़िम में डालकर इधर आने की कोशिश की। मैं कुछ-न-कुछ कर लूंगी इन्तज़ाम। रुपये मेरे पास हैं।''[32]

पत्र पढ़ कर सूरज आगबबूला हो जाता है और दो पिस्तौल तथा कारतूस की पेटी बांध कर घोड़े पर सवार होकर चल पड़ता है और आ जाता है गौरी के द्वार पर। वहां आँखें लाल करके गौरी को घूर-घूर कर देखता है। उस समय गौरी कहती है-''तो मुझे मार दो सूरज। तुम मार दो मुझे चैन आ जाएगा। जो कुछ कर बैठी हूँ, उसे कैसे मिटा दूं...मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है।''[33]

स्पष्ट है कि गौरी बड़ी निस्सहाय तथा बेबस है। उसने जान-बूझकर कुछ नहीं किया। दीवान के जाल में फंसना उसके नितान्त कच्चेपन का परिणाम होता है। सूरज की सहायता से भी वह उस जाल से निकल नहीं पाती है। उसका व्यक्तित्व परिस्थितिओं के कुहासे में छुपा पड़ा है। जिसे वह चाहती हुई भी बाहर निकालने में असमर्थ है। अतः वह बेबस है। इसीलिए वह कहती है- ''सोचा ही नहीं कि इसका फल क्या होगा'' इतनी अक़ल ही नहीं कि सोच सकूं। जब जो ठीक समझा, जो मन हुआ कर दिया। मेरे साथ हमेशा कुछ-न-कुछ हो ही गया। कभी अपने के लिए कभी पराए के लिए।''[34]

---

32. श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 74।
33. श्रेष्ठ कहानियां पृ. 75
34. वही पृ. 141

उसके ये शब्द ही उसके दिमागी कच्चेपन तथा भले-बुरे की पहचान कर सकने की क्षमता की कमी के साक्षी हैं।

असल में नारी जब अपने आपको अकेली और असहाय समझती है तब उसमें अपने अस्तित्व को बचाने की चिन्ता तीव्र रूप धारण कर लेती है। और यही चिन्ता कभी-कभी उसे गल्त कदम उठाने के लिए भी विवश कर देती है। परिणाम यह होता है कि वह अपनी परम्परा को भी दकियानूसी समझ कर उससे टूट जाती है।[1] इस स्थिति में पहुँची हुई नारी भला अपने व्यक्तिव को कैसे उभार सकती है। इस सन्दर्भ में शोचनीय स्थिति तो यह है कि स्वतन्त्रता की अदम्य चाह नारी को कभी-कभी बुरी तरह उच्छृंखल भी बना देती है। इसीलिए वह सीता, सावित्री और अनुसूया आदि आदर्श नारियों के आदर्श पुराने और दकियानूसी समझने लग पड़ी है। वह अब अपने आपको पूर्ण स्वतन्त्र समझती है। वह अब पुरानी मान्यताओं को पूरी तरह तिलाञ्जलि दे चुकी है। आज उसने नैतिकता के कवच-कुण्डलों को उतार कर फेंक दिया है। राजेन्द्र यादव की ''जहाँ लक्ष्मी कैद हैं।'' मोहन राकेश की 'मलवे का मालिक', निर्मल वर्मा की 'वीक एंड लवर्स', उषा प्रियंवदा की ''ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, पूर्ति, चाँद चलता रहे'', मेहरून्निसा परवेज़-'अपने होने का एहसास, अयोध्या से वापसी, अंतिम चढ़ाई, गुरुमान, रेगिस्तान आदि कहानियों में नारी के आधुनिकता के रंग में रंगे ऐसे ही विविध रूपों की अक्कासी की गई है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' की नीलू कई पुरुषों के साथ सम्पर्क साध कर सन्तोष अनुभव करती है। उसे अपने कृत्य पर तनिक भी ग्लानि नहीं है। वह जो कुछ भी करती है, उसे सही समझती है। 'पूर्ति' कहानी की नारी परपुरुष नलिन के साथ दैहिक सम्बन्ध स्थापित करके परम सुख की अनुभूति प्राप्त करती है। 'सम्बन्ध' कहानी की नायिका श्यामला बंधे-बंधाए और पुरानी लकीर पर चलने वाले जीवन से ऊब अनुभव करती है और इसीलिए उससे मुक्त होना चाहती है। कृष्णा सोवती, निरूपमा सोवती, भीष्म साहनी, रमेश बख्शी, शानी आदि कहानीकारों ने नारी स्वतन्त्रता को आधार बनाकर अनेक कहानियां लिखीं हैं। परन्तु इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि नारी ने अपने उत्थान के लिए अपनी आँखें ही नहीं खोल रखी हैं अपितु अब वह अपने भविष्य या भावी योजनाओं का चुनाव करने कि लिए भी स्वतन्त्र और सशक्त है। परन्तु दुःखद स्थिति तो यह है कि स्वतन्त्रता या मुक्त होने के नाम पर उसने जो पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करना आरम्भ कर दिया है, उससे तो हमारी सामाजिक व्यवस्था के चरमराने का खतरा है। इस संदर्भ में डॉ. सुषमा नारायण की ये पंक्तियां गम्भीरता से विचारणीय हैं-''वैयक्तिक भावनाओं का आदर बढ़ा है, लेकिन उसने नारी को कहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया है, यही चिन्तनीय विषय है। आज की नारी नैतिकता के हिस्से-हिस्से करके देख रही है....नैतिकता की मिशाल के प्रति अपना आक्रोश और विद्रोह व्यक्त कर रही है, पर क्या वह समाज को या जीवन को किसी प्रकार का भी मूल्य दे पा रही है।''[2]

---

1. *संधान 96 दिल्ली पृ. 23*
2. *स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी स्वरूप सं. श्रीधंर शास्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग इलाहाबाद*

ऊपर दिये गए सर्वेक्षण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश हिन्दी कथा-साहित्य उन नारी पात्रों-चरित्रों से भरा पड़ा है जो सामाजिक कुरीतियों और पुरुष वर्ग के अत्याचारों से ऊब और अति क्षुब्ध होकर नवचेतना के इस युग में सम्मानपूर्वक जीने के लिए अपने व्यक्तित्व को नये आयाम देने के लिए संघर्षशील हैं। यह ठीक है कि कुछ कहानियों के नारी-पात्र तथाकथित अत्याधुनिकता के वातावरण के रंग में इतना रंग गए हैं कि उन्हीं में अपने व्यक्तित्व को खोकर जीना चाहते हैं, पर इस प्रकार के चरित्रों का सृजन पश्चिम की कोरी या अन्धी नकल के सिवाय कुछ नहीं है। इस वैज्ञानिक युग के आलोक में एवं भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में सृजित कहानियों के नारी चरित्रों का अपने व्यक्तित्व की खोज के लिए संघर्षरत होना उचित भी है और श्लाघनीय भी। यदि पुरुष और स्त्री दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं और मानव-सृष्टि के सृजन में दोनों का समान योगदान है तो फिर नारी को उसके न्यायोचित अधिकारों से वंचित करके पुरुष द्वारा मनमाने ढंग से शोषित और प्रताड़ित क्यों किया जाए? उसे भी सम्मान के साथ जीने का अधिकार है। मां, बहन, पत्नी और पुत्री सभी रूपों में उसे सम्मानपूर्वक जीने का पूरा-पूरा अधिकार है। यदि वह अपने अधिकारपूर्ण सम्मान को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है तो सर्वथा उचित भी है एवं सराहनीय भी। यदि वह इससे विपरीत पश्चिमाभिमुख होकर अपनी तथाकथित स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती है तो उसका वह कृत्य अवश्य निन्दनीय है।